महर्षि वाजश्रवा का याग

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ । तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस॥ कठोपनिषद १.१.१

पदार्थः (उशन्) परमसुख की इच्छा रखने वाले वाजश्रवस ऋषि ने सर्वमेध यज्ञ किया और उसमें (सर्ववेदस ददौ) अपना सब धन दे दिया। (तस्य नाचिकेता नाम पुत्र आस) उसका नाचिकेता नामक एक पुत्र था। श्रीपाद दामोदर सातवेलेकर जी

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

महर्षि विश्वश्रवा ने महर्षि सोमकेतु से कहा प्रभु! मेरी आकांक्षा है, मेरी उत्सुकता है मैं अपने जीवन को मोक्ष में ले जाना चाहता हूँ। मैं मोक्ष को चाहता हूँ। सोमकेतु ने कहा कि हे ऋषिवर विश्वश्रवा! मेरी इच्छा तो यह है कि तुम प्रभु का चिन्तन करते हुए याग करो। क्योंकि याग करने से ही तुम्हारे जीवन में महत्ता ओत प्रोत हो सकती है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा प्रभु! मैं कैसा याग करूँ? उन्होंने कहा व्यापक याग होना चाहिए। मानव के जीवन में नाना प्रकार की आभा होती है। इसलिए व्यापक याग हो। व्यापक विचार हों। व्यापक ही कर्म हो। मानो व्यापक ही चिन्तन होना चाहिए। नाना रूपों में तुम व्यापकता को विचारते रहो। क्योंकि परमपिता परमात्मा व्यापकवाद में रहता है। इसीलिए जो व्यापक है उस व्यापक के लिए आज चिन्तन, कर्म और याग होना चाहिए।

महर्षि विश्वश्रवा ने ऋषियों का समूह एकत्रित किया और मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा, बहुत प्रिय तो उन्होंने सर्व द्रव्य का सङ्कल्प कर लिया। जितना मेरे द्वारा द्रव्य है मैं सर्व द्रव्य को देवताओं के द्वारा परणित करना चाहता हूँ। देवताओं को हूत करना चाहता हूँ। वह यज्ञ मानव को देवता बना देता है।

महर्षि वाजश्रवा का याग

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

तं कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत॥ कठोपनिषद १.१.२

पदार्थः (दक्षिणासु नीयमानासु) दक्षिणाए जब ऋत्विज लोग ले जा रहे थे, उस समय (तं कुमार सन्तं) वह उसका पुत्र छोटा ही था उस समय उस बालक में (श्रद्धा आविवेश) श्रद्धा उत्पन्न हुई, (सः अमन्यत) उसने सोचा। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

पीतोदका जग्धतृणादुग्धदोहा निरिन्द्रियाः । अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत्॥ कठोपनिषद १.१.३

पदार्थः कि मेरा यह पिता (पीतोदकाः) जो जल पी नही सकती, (जग्ध तृणाः) जो घास खा नही सकती, (दुग्ध दोहा) जो दूध नही देती (निरिन्द्रियाः) जो वन्ध्या अर्थात इन्द्रिय हो गयी हैं, (ता ददत्) ऐसी गोऔं को दान करने वाला (सः तान् गच्छति) उन लोकों को प्राप्त होता है जो (अनन्दाः नाम से लोकाः) आनन्द रहित दुःख पूर्ण लोक हैं। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! नाना ऋषियों ने, जब यह श्रवण किया, क्या विश्वश्रवा याग कर रहे है, तो ऋषि मुनियों का आगमन हुआ, और ऋषि मुनि अपनी अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो गएं, विद्यमान हो करके, बेटा! याग प्रारम्भ होता रहा, गति करता रहा। मेरे प्यारे! देखो, वह कुछ समय के पश्चात, याग सम्पन्न हो गया, सम्पन्न हो जाने के पश्चात, उन्होंने ब्राह्मणों को मानो दक्षिणा देना प्रारम्भ किया, बेटा! उन्होंने कहा हे दक्षिण ब्रह्मा जब ब्रह्मा ने यह कहा कि मुझे दक्षिणा प्रदान करो तो विश्वश्रवा ने मानो अपने सर्वत्र त्रुटियों को बेटा! दक्षिणा में परणित कर दिया। वास्तव में दक्षिणा तो उन्होंने प्रदान की अब उनकी उदर पूर्ति के लिए ब्राह्मणों को बेटा! उन्होंने वेद के पठन पाठन करने वालों को बेटा! गऊ और मुद्राएं बेटा! उन्हें प्रदान करने लगे। उनमें कुछ गऊ ऐसी थी, जो वृद्ध थी, देने से किसी को लाभ नहीं प्राप्त हो सकता था। मेरे प्यारे! उनका सात वर्ष का एक ब्रह्मचारी पुत्र मानो देखो, जिसको हम नाचिकेता के रूप में परणित करते है नाचिकेतां नचं ब्रह्मे वर्ण स्वतम ब्रह्माः वेद के मन्त्रों

के आधार पर नचिकेता उसे कहते है, जो मानो देखो, ब्रह्म की आभा में परणित हो गया, जो ब्रह्म में जिज्ञासु बन गया हो, उसे हम नचिकेता के रूप में मानो परणित करते रहते है। वह ब्रह्मचारी कहता है, अपने पिता के द्वारा वह चिन्तन मनन करने के पश्चात, क्या मेरा पिता जो दान कर रहा है, द्रव्य दान दे रहा है, गऊंए दान दे रहा है, बहुत सी गऊएं वृद्ध हैं, उनके देने से लाभ नहीं है, और जिसके देने से द्रव्य के या कोई वस्तु दो, उस दूसरों को लाभप्रद न हो तो वह पाप कर रहा है। तो मेरा पिता यह पाप कर रहा है, जो गऊएं वृद्ध है, उनके देने से कोई लाभ नहीं, वह पापाचार में परणित हो रहे है। मेरे प्यारे! विश्वश्रवा ने जब दक्षिणा प्रारम्भ की तो उनमें बहुत सी गऊएं, वृद्ध थी मानो देखो, वृद्ध गऊओं को अर्पित करने लगे जिनके अर्पित करने से कोई लाभ नहीं होता, वह पाप का मूल बन जाता है। परन्तु देखो, ऋषि ने सम्भविता ब्रह्मणे क्योंकि उनका एक पुत्र या, सात वर्षीय, सात दिवस का, जिसका नाम नचिकेता था।

महर्षि वाजश्रवा का याग

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति॥ कठोपनिषद १.१.४

पदार्थः (सः पितरं ह उवाच) उसने अपने पिता से पूछा कि हे (तात! कस्मै मां दास्यसि इति) हे पिता! मुझे किसको दोगे? इसी तरह (द्वितीयं तृतीयं) दूसरी बार और तीसरी बार कहा। तब (तं ह उवाच) उसको पिता ने कुछ क्रुद्ध सा हो कर कहा कि (त्वा मृत्यवे ददामि इति) तुझे मृत्यु को दूंगा। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

बालक नचिकेता ने मुनिवरों! देखो, अपने पिता से कहा हे पिता! आज यह जो तुम दान दे रहे हो, आज जो सम्पदा प्रदान कर रहे हो अहा! यागां ब्रह्मे व्रणे अस्सुता मैं भी एक सम्पदा हूँ आप मुझे किसे प्रदान करोगे।

तो मेरे प्यारे! जब उन्होंने यह कहा कि मुझे किसे प्रदान करोगे? तो याग, मुनिवरों! उद्दालक गोत्रीय वर्णे मुनिवरों! उद्दालक गोत्रीय ऋषि ने कहा कि मैं तुझे मृत्यु को दूंगा। अब मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी मौन हो गया, जब सायंकाल को, अपने क्रियाकलाप से, ऋषिवर मानो उपराम हुए तो मुनिवरों! देखो, स्थली पर विद्यमान, अपने विश्राम गृह में, जब विश्राम के लिए पहुंचे तो बालक नचिकेता उनके समीप जा पहुंचे और बालक नचिकेता ने चरणों को स्पर्श करके कहा कि हे प्रभु! आपने जो मुझे कहा था कि मैं तुझे मृत्यु को दूंगा, क्योंकि हमारा यह जो गोत्र, यह उद्दालक कहलाता है और उद्दालक गोत्र का जो निकास हुआ है, वह हरितत गोत्रों से हुआ है, हरितत गोत्र का निकास, अङ्गिरस गोत्रों से हुआ है और अङ्गिरस गोत्रों का निकास वह ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा से हुआ है। हमारा जो इतना वंशलज चला आ रहा है, इसमें कोई भी मानव ऐसा नहीं हुआ जो मिथ्यावादी हो, मानो देखो, परम्परा चल रही है, कोई भी मानव मिथ्यावादी नहीं हुआ है आपका वाक भी, पितर मिथ्या नहीं होना चाहिए।

मेरे प्यारे! देखो, जब उद्दालक गोत्रीय ऋषि ने इस वाक को श्रवण किया, तो उन्होंने कहा बालक!

जाओ, तुम मृत्यु को चले जाओ। तो मेरे पुत्रों! नचिकेता ने कोई पाप तो नहीं किया था, वह वहाँ से गमन करने लगा, गमन करते हुए, नमस्कार करके, चरणों को स्पर्श करके मैं मृत्यु को जा रहा हूँ। मुनिवरों! विश्वश्रवा ने कहा हे ब्रह्मा ब्रणे हे ब्रह्मचारी! तुम मृत्यु को चले जाओ।

यमाचार्य-नाचिकेता संवाद

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

वैश्वानरः प्रविशति अतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् । तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥ कठोपनिषद १.१.७

पदार्थः (ब्राह्मणः अतिथिः गृहान् प्रविशति) ब्राह्मण अतिथि बनकर जब वह नाचिकेता घर में प्रवेश करता है तब वह साक्षात् (वैश्वानरः) अग्नि ही होता है। (तस्य एतां शान्ति कुर्वन्ति) उसकी इस तरह शान्ति करते हैं। हे (वैवस्वत! उदकं हर) यम! उसको जल आदि दे॥ श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

आशाप्रतीक्षे सङ्गतं सूनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान् । एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ कठोपनिषद १.१.८

पदार्थः ब्राह्मणः यस्य अल्पमैघसः पुरुषस्य गृहे) ब्रह्माण जिस मूढ पुरुष के घर में (नश्नन् वसति) बिना भोजन के भूखा रहता है, उसकी (आशा प्रतीक्षे) आशाएं और आकांक्षाएं, (संगतं) उसकी सत्संगति, (सूनृतां) उसका सत्य तथा प्रिय भाषण, (इष्टा पूर्ते) उसके यज्ञ और जनोपकार के कार्य (सर्वान् पुत्र पशून्) उसके सब पुत्र और पशु, (एतत् वृक्ते) इस सबको वह नष्ट कर देता है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

ओ३म् यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ अथर्ववेद ०९.००६.०३

पदार्थः (यत् वै) जब ही (अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करने हारा (अतिथीन्) अतिथियों [नित्य मिलने योग्य विद्वानों] को (प्रति-पश्यति) प्रतीक्षा से देखता है, वह (देवयजनम्) उत्तम गुणों का संगतिकरण (प्र ईक्षते) अच्छे प्रकार देखता है॥ श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

ओ३म् अस्यै देवतायाउदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीत्येनंपरि वेविष्यात्॥ अथर्ववेद १५.१३.१३

पदार्थः (अस्यै) उस (देवतायै)देवता [विद्वान्] को (उदकम्) जल (याचामि) समर्पण करता हूँ, (इमाम्) उस (देवताम्)देवता [विद्वान्] को (वासये) ठहराता हूँ, (इमाम् इमाम्) उस ही (देवताम्) देवता [विद्वान्] को (परि वेवेष्मि) भोजन परोसता हूँ–(इति) इस प्रकार से (एनम्) उस [विद्वान्] की

(परि वेविष्यात्) [भोजन आदि से] सेवा करे ॥ पण्डित क्षेमकरण

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो मेरे प्यारे! बालक ने कोई पाप नहीं किया था, नचिकेता ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए यमाचार्य के गृह में पहुंचे, जिन ऋषियों ने मृत्यु को विजय कर लिया था, मृत्यु को विजय कौन करता है? मृत्यु कैसे विजय होती है? यह बेटा! एक प्रसंग आते रहते है मृत्यु को विजय वह करता है जो मानव देखो, अज्ञान को त्याग देता है। क्योंकि अज्ञान में मृत्यु रहती है, अज्ञानियों को मृत्यु आती है, जो यह जानता है कि प्रभु के राष्ट्र में आलस्य नहीं है, प्रमाद नहीं है और वहाँ ज्ञान ही ज्ञान है, वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है और जो प्रकाश में रत्त रहने वाला है, वह प्रकाशमयी कहलाता है और प्रकाश में बेटा! मृत्यु नहीं होती।

मेरे पुत्रों! देखो, ऐसे यमाचार्य थे, यमाचार्य के गृह पर, जब बालक, ब्रह्मचारी नचिकेता पहुंचे तो बेटा! देखो, नचिकेता तीन दिवसं ब्रह्मे मानो द्वार पर विद्यमान हो गये। माता से कहा हे मातेश्वरी! गुरूपत्नी से कहा कि आचार्य कहा है? उन्होंने कहा वे भ्रमण करने पहुंचे हैं। हे ब्रह्मचारी! आओ, तुम अन्न, जल का पान करो। अन्न, जल का पान न करने वाले नचिकेता ने कहा कि मुझे जब तक आचार्य के दर्शन नहीं होंगे, तब तक मैं कोई भी अन्न, जल का पान नहीं करूंगा। मेरे प्यारे! देखो, पत्नी दुःखित हो गई, कि हम कैसे दुर्भागी है, एक ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मचारी हमारे आश्रम में अन्न, जल से पीडित है मानो देखो, व्याकुल होती रही, जिस गृह में ब्रह्मवेत्ता मुनिवरों! अन्न, जल से पीडित रहता है, वह अपने पाप को त्याग देता है और उस गृह के पुण्य ले जाता है।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः। नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व॥ कठोपनिषद १.१.९

पदार्थः यम कहता है-हे (ब्राह्मन्) ब्राह्मण! (नमस्यः अतिथिः) तू नमस्कार करने योग्य अतिथि (मे गृहे अनश्नन् यत् तिस्रो रात्रीः अवात्सीः) मेरे घर में बिना भोजन जो तीन रात्री तक रहा है, (तस्मात्) इस कारण (ब्रह्मन्) हे ब्राह्मण! (प्रतित्रीन् वरान् वृणीष्व) प्रत्येक दिन के बदले एक ऐसे तीन वर मांग। (ते नमः अस्तु) तुझे नमस्कार हो और (मे स्वस्ति अस्तु) मेरे लिए कल्याण हो। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण है नचिकेता को तीन दिवस, तीन रात्रि हो गई, इतने में मुनिवरों! यमाचार्य आ पहुंचे। तीन दिवस के पश्चात, पत्नी व्याकुल होने लगी। हे प्रभु! हम तो बड़े अप्रतं ब्रहे हम तो पातक बन गएं है। मानो पाप अग्रणी बन गएं है। एक ब्रह्मवेत्ता, उद्दालक गोत्रीय नचिकेता हमारे द्वार पर विद्यमान है, तीन दिवस और तीन रात्रि हो गएं हैं। मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने ब्रह्मचारी को अश्वण ब्रह्मे व्रताः उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! अप्रतम् ब्रह्मचारी का नाम उच्चारण करते ही मुनिवरों! ब्रह्मचारी, ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो गये। उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! मैं तुम्हें तीन वर देता हूँ, तुम चाहो, जो इच्छा हो, वह स्वीकार करो।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो । त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥ कठोपनिषद १.१.१०

पदार्थः नाचिकेता अपना प्रथम वर मांगता है-हे (मृथ्यो) यम! (एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे) मैं इन तीन वरों में से पहिला वर मांगता हूं कि (गौतमः शान्तसंकल्पः सुमनाः मा अभि वीतमन्युः) मेरा पिता गौतम शान्त और प्रसन्न मन वाला तथा मेरे प्रति क्रोध रहित (तथा स्यात् प्रतीतः) जैसा व्यवहार करने वाला होकर (स्वत. प्रसृष्टं मा अभिवदत्) तुझसे अनुज्ञा लेकर जब मैं जाऊं तब मेरे साथ वह आदर से बोले। पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः । सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ कठोपनिषद १.१.११

पदार्थः (मत्प्रसृष्टः औद्दालकिः आरुणिः) मुझसे अनुमोदित हुआ तेरा पिता औद्दालकि आरुणि तुझसे (यथा पुरस्तात् प्रतीतः भविता) पहिले वर्ताव करने वाला ही होगा। (मृत्यु मुखात् प्रमुक्तं त्वां ददृशिवान्) मृत्यु के मुख से मुख्त होकर आये हुए तुझे जब वह देखेगा तब (वात मन्युः) क्रोधारहित होकर (सुखं रात्रीः शयिता) सुख से रात्री में सोयेगा। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उन्होंने कहा हे प्रभु! मैं यह चाहता हूँ जिस पिता ने, जिस अभिलाषा से मुझे मृत्यु को दिया है मेरे पिता की वह अभिलाषा पूर्ण हो जानी चाहिए। उन्होंने कहा तथास्तु।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति । उभे तीर्त्वा अशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ कठोपनिषद १.१.१२

पदार्थः नाचिकेता कहतै है-(स्वर्गे लोके किंचन भयं न अस्ति) स्वर्ग लोक में कुछ भी भय नही है, (न तत्र त्वं) वहां तू भी नही है, अर्थात वहां मृत्यु भी नही है वहां (जरया न बिभेति) बुढ़ापे से कोई डरता नही है। (उभे अशनायापिपासे तीर्त्वा) भूख और प्यास इन दोनों से पार होकर (शोकातिगः) शोक से दूर होता हुआ (स्वर्गलोक के मोदते) स्वर्ग लोक में साधक आनन्द प्रसन्न रहता है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तं श्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ कठोपनिषद १.१.१३

पदार्थः हे (मृत्योः) यम! (सः त्वं स्वग्यं अग्निं अध्येषि) सो आप स्वर्ग प्राप्ति कराने वाले अग्नि को जानते हैं, इसीलिए (त्वं श्रद्दधानाय मह्यं प्रब्रूहि) आप मुझ श्रद्धालु को उसका उपदेश करें। (स्वर्गलोकाः अमृतत्वं भजन्ते) स्वर्ग लोक में रहने वाले अमरत्व को प्राप्त करते हैं। (एतत् द्वितीयेन वरेण वृणे) यह मैं दूसरे वरसे वरता हूं। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम्॥ कठोपनिषद १.१.१४

पदार्थः हे (नाचिकेतः) नचिकेता! (अनन्तलोकाप्ति अथो प्रतिष्ठां स्वर्ग्य अग्निं प्रजानन्) अनन्त सुखदायक लोकों को देने हारे, तथा सबके आधार वैसे ही स्वर्ग देने वाले अग्नि को यथावत् जानने वाला मैं, (ते प्रब्रवीमि) तुझे बतलाता हूं। (मे तत् उ निबोध) मुझसे उस विषय का ज्ञान तू प्राप्त कर। (एतत् गुहायां निहितं त्वं विद्धि) यह अपनी बुद्धि में रखा है। यह तू समझ। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा । स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः

पुनरेवाह तुष्टः ॥ कठोपनिषद १.१.१५

पदार्थः यम ने उस (लोकादिं तं अग्निं) लोकों के आदि कारण का तथा (याः यावती वा यथा वा इष्टकाः) जो जितनी और जिस प्रकार की उसकी साधन वतलाया। (स च अपि यथा उक्तं तत् प्रत्यवदत्) उस नाचिकेता ने भी, जैसा उसे कहा था, वैसा उस ज्ञान को दुहरा दिया। (अथ तुष्टः मृत्युः पुनः आह) तब प्रसन्न हुए मृत्यु ने उसे फिर कहा। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वह द्वितीय वचन में कहा कि प्रभु! मैं तीन प्रकार की अप्रतं अग्नं ब्रह्मणे स्वर्ग गच्छतम् मैं स्वर्ग को जानना चाहता हूँ, यह स्वर्ग क्या है?

तो बालक नचिकेता के प्रश्न करने पर, यमाचार्य ने कहा हे ब्रह्मचारी! मानो देखो, उसके पश्चात, स्वर्ग की कल्पना कराने लगे, हे ब्रह्मचारी! तीन अग्नि, चार प्रकार की अग्नियां की पूजा करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है। वे तीन प्रकार की अग्नि कौन सी हैं? सबसे प्रथम अग्नि का नाम गार्हपथ्य कहलाता है। गार्हपथ्य, गृहपथ्य, वैश्वानर ये तीन प्रकार की अग्नि कहलाती है। मानो देखो, गार्हपथ्य नाम की अग्नि में ब्रह्मचारी तप रहा है। प्रत्येक इन्द्रिय को तपा रहा है, मानो वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि कहलाती है। जिसमें देखो, वह विद्या का अध्ययन करता है, चयन करता है, अपने को अपनी ही आभा में परणित होने लगता है। मानो वह ब्रह्मचरिष्यामि गतप्रव्हा अवर्णस्ति वह ब्रह्मचारी अपने को ब्रह्म में पिरो देता है। ब्रह्मचारी यह जानता है कि ब्रह्मचर्य के दो प्रकार के स्वरूप कहलाते है। एक ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिष्यमि मानो देखो, ब्रह्म और चरी, दो ही शब्द कहलाते है। ब्रह्म कहते है परमात्मा को, और मुनिवरों! चरी कहते है प्रकृति को, जो दृष्टिपात आने वाला जगत है, दृष्टि जो पात आ रहा है यह तरंगों वाला जो जगत है, यह सूक्ष्म जो जगत है जो नाना प्रकार की तरंगों में निहित रहता है। मानो यह जगत एक चरी कहलाता है और ब्रह्म कहते है परमपिता परमात्मा को, ब्रह्मचरिष्यामि।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-गार्हपथ्य अग्नि-गृहपथ्य अग्नि

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ छान्दोग्योपनिषद ४.११.२

पदार्थः सो जो (कोई) जानता हुआ इस (गार्हपत्याग्नि) को प्रयोग में लाता है वह पाप कर्म को नाश करता है, लोकवान् होता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है । उज्जवल जीवन धारता है । इसके पुत्र पौत्र आदि क्षीण नहीं होते । इस और उस (पर) लोक में उसकी (अग्नियां) रक्षा करती हैं जो (गार्हपत्य अग्नि) को, ऐसा जानता हुआ काम में लाता है। नारायण स्वामी

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उन्होंने कहा प्रभु! कौन सी अग्नि है? सबसे प्रथम अग्नि का नाम गार्हपथ्य कहा जाता है, जिस गार्हपथ्य नाम की अग्नि में बेटा! ब्रह्मचारी तपता है, ब्रह्मचारी महान तपने वाला है, बेटा! अपने ब्रह्मचर्य से तप रहा है, ब्रह्म का चिन्तन हो रहा है मानो ब्रह्म विद्या का अध्ययन हो रहा है, और अध्ययन के साथ मानो देखो, वह अग्नि का चयन करके प्रातःकाल मानो देखो, वह याग कर रहा है। प्रातः कालीन बेटा! अग्नि को अग्न्याधान करता हुआ, साकल्य प्रदान कर रहा है, मेरे पुत्रों! विचार यह कि अपने ब्रह्मचर्य व्रत से रह करके, विद्या का अध्ययन करना, अपने में महान बनना ही, मेरे पुत्रों! देखो, वह वही वर्णन ब्रह्मे व्रतम् वहीं तो मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी गार्हपथ्य अग्नि की पूजा करता है। गार्हपथ्य अग्नि कहते है, जो विद्या अध्ययन करता है। मेरे प्यारे! देखो, अपने में सर्वांग विद्याओं का अध्ययन करने वाला, मेरे पुत्रों! देखो, वह गार्हपथ्य अग्नि कहलाती है। उन्होंने कहा ब्रह्मचारी! इस अग्नि में ब्रह्मचारी तपता है, आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके, नाना प्रकार का नाना प्रकार की विद्याओं का अध्ययन कराता है, जैसे ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन, हमारे यहां वैदिक साहित्य में, तीन प्रकार की विद्या कहलाती है। बेटा! ज्ञान, कर्म और उपासना बेटा! ज्ञान होना ज्ञान के पश्चात कर्म है और कर्म के पश्चात उपासना कहते है। मेरे प्यारे! ज्ञान कहते है हमने संसार, हमने

किसी वस्तु की दृष्टिपात कर लिया है। और उसके अनुकूल उसका आचरण करते है, उसका निर्माण करते है, तो वह ज्ञान कहलाता है। मेरे प्यारे! ज्ञानां देखो, ज्ञान और देखो, ब्रह्मणं ब्रह्मा मुनिवरों! देखो, कर्म कहलाता है। ज्ञान के पश्चात सबसे प्रथम कर्म है उसके पश्चात मुनिवरों! कर्मकाण्ड कहलाता है। कर्म करना, मुनिवरों! ज्ञान के पश्चात यह ज्ञान कर लेना कि सूर्य है सूर्य की नाना प्रकार की किरणें हमें स्पर्श कर रही है, उसके पश्चात सूर्य के मानो देखो, आकार वाला हम अपना देखो, किरणों को अपने में भरण करने लगते है, कर्म में लाते है, उसको मेरे पुत्रों! कर्म में लाने का नाम ही विचार आता है बेटा! वह कर्मकाण्ड कहलाता है। और तृतीय बेटा! उपासना है, उसका उपयोग करना ही उसकी उपासना कहलाता है, हमें माता की उपासना करनी है, उपासना का अभिप्राय यह है कि हमें माता के प्रति, मानो देखो, पितरों के प्रति, हमारा भाव होना चाहिए, हमें उनमें समर्पित हो करके, उनकी सेवा करने का नाम ही उनका उपयोग क्या है? क्या उनका घृतं ब्रह्मा वर्णन मेरे प्यारे! देखो, विद्या की उपासाना करनी है, उपासना जो हमने अध्ययन किया है, ज्ञान के द्वारा कर्म के द्वारा, उसी ज्ञान और कर्म को हम क्रिया में लाना, वही हमारी उपासना कही गई है। जैसे अग्नि की हमें पूजा करनी है अग्नि में बेटा! सुगन्ध पदार्थों को प्रदान करना, अग्नि को अपने में धारण करना अग्नि का चयन करने का नाम ही, उसकी उपासना मानी गई है। तो मैं बेटा! देखो, विशेषता में न जाता हुआ ऋषि कहता है क्या किसी वस्तु का उपयोग करने का नाम सात्विकता रूप में बेटा! वह उसकी उपासना मानी गई है। तो मुनिवरों! ज्ञान, कर्म, उपासना इस त्रिविद्या को धारण करने वाला ब्रह्मचारी अपने में महान बनने के लिए, तत्पर होता है।

तो विचार विनिमय क्या, मेरे पुत्रों! मैं दूरी चला गया हूँ, विचार देता हुआ दूरी न जाऊं, विचार क्या मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा कि इस गार्हपथ्य अग्नि की पूजा करने वाला ब्रह्मचारी मानो गृह में प्रवेश करता है, वह गृह में जब प्रवेश करता है, तो गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा कौन सी है? जब माता पिता बेटा! गृह को स्वर्ग बनाना चाहते है, कोई माता पिता यह नहीं चाहता, कि हमारा गृह स्वर्ग न रहे, स्वर्ग कैसे बनेगा? जब गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा की जाती है, गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा क्या है? मुनिवरों! देखो, गृह में याग करना, गृह में दर्शनों की चर्चा होना, गृह में अपने आचरणों की सुगन्धि होना, मेरे प्यारे! बाल्य बालिका उनका अनुसरण करते है और जब अनुसरण करते है, तो गृह स्वर्ग बन जाता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, यह स्वर्ग है, उसके पश्चात अपने अनुभव को विद्यालय में प्रवेश कराना ममत्तव की आभा को शान्त करना, यह बेटा! देखो, स्वर्ग की आभा कहलाती है। मेरे प्यारे! यही अग्नि है, जो गृहपथ्य नाम की अग्नि कहलाती है। जहां मानो देखो, माता पिता जिस व्यवहार को करते हैं, उस गृह में वही व्यापार बाल्य बालिका में प्रवेश हो जाता है। मानो देखो, यदि वह स्वर्ग के लिए कामना करते हैं, वाणी से यथार्थ उद्गीत गाते हैं, वेदों का अध्ययन करते हैं,

मानवीयता का दर्शन उनके समीप होता है, वेदों का और दर्शनों का अध्ययन करके इसी आधार पर बाल्य बालिका, वह जो विचारों की अग्नि है, वह जो गृहपथ्य नाम की अग्नि है, उसी के आधार पर, बेटा! गृह एक स्वर्ग बन जाता है, गृह एक महानता की ज्योति में नृत्त करने लगता है।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-आह्वनीय अग्नि-वैश्वानर अग्नि

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति॥ छान्दग्योपनिषद ४.१२.१

पदार्थः इसके बाद प्रसिद्ध इस ब्रह्मचारी को अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि) ने उपदेश दिया कि जल, दिशाएँ, नक्षत्र और चन्द्रमा (मेरे पोषक) हैं । जो यह चन्द्रमा में पुरूष (प्रकाश विशेष) दिखाई देता है वह मैं हूं, वहीं मैं हूं। नारायण स्वामी

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकीभवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते॥ छान्दग्योपनिषद ४.१२.२

पदार्थः सो जो कोई इस (अन्वाहार्यपचन अग्नि) को इस प्रकार जानता हुआ काम में लाता है, वह पाप कृत्यों को नाश करता है, लोकवान् होता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है उज्जवल जीवन जीता है। उसके पुत्र पौत्रादि क्षीण नहीं होते । इस और उस (पर) लोक में जो इस (अग्नि) को ऐसा जानता काम में लाता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तीसरी अग्नि का नाम आह्वनीय नाम की अग्नि कहलाता है। जब आह्वनीय नाम की अग्नि को मानो इन दोनों प्रकार की अग्नियों से पार हो करके, जब आह्वनीय अग्नि में प्रवेश करता है। तो बेटा! देखो, गृह स्वामी और गृह स्वामिनी अपनी गृहस्थली को त्याग करके बेटा! वह अपने में वृत बना करते हैं। परिमार्जित बन करके जब वह वेद का और ब्रह्म का अध्ययन करते है। वह मुनिवरों! देखो, अपने गृह को त्याग देते हैं, विद्यालयों में प्रवेश होते हैं, विद्यालयों में अपने अनुभव की शिक्षा देते हैं, बाल्य बालिका को मानो देखो, वह अपने जीवन में एक नवीन अग्नि को जागरूक करते हैं। वह आह्वनीय नाम की अग्नि है, जिस अग्नि का चयन करा करके, बेटा! प्रत्येक ब्रह्मचारी, बाल्य बालिका उनके बनते हैं। मेरे पुत्रों! देखो, विद्यालय इससे ऊँचे बनते हैं, विद्यालय जब भी पवित्र बना है, वह आचार्य

जब तपे हुए होते हैं, और आह्वनीय नाम की अग्नि का पूजन करने वाले होते हैं, वही तो अपने विद्यालय को ऊँचा बनाते हैं। विद्यालय को पवित्र बनाते हैं। गृह को ऊँचा बनाते हैं। तो मेरे पुत्रों! देखो, विचार विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, हमें अपने को ऊँचा बनाने के लिए आह्वनीय नाम की अग्नि का पूजन करना है। यह वही आह्वनीय नाम की अग्नि है, जो अग्नि विद्यालयों में पनप रही है, वही आह्वनीय नाम की अग्नि है जो विज्ञानवेत्ताओं के गृह में पनप रही है, वही आह्वनीय नाम की अग्नि है, जो बेटा! जो आयुर्वेदाचार्यों के गृह में पनप रही है, और पनपती हुई, नाना प्रकार का उद्गीत गाने वाली, उद्गीत अप्रतो उदय होने वाले मानो विचारों को ले करके, मानो वह नाना प्रकार की अग्नियों को वह अपनें में धारण करके बेटा! देखो, वह जो हृदय है, जिस हृदय में पञ्चीकरण हो रहा है, उसके जागरूक करके बेटा! जो आध्यात्मिक याग करने वाला है तो बेटा! मैं दूरी न चला जाऊं, विचार यह दे रहा था, कि ये तीन प्रकार की अग्नियों का पूजन करने वाला, पूजन का अभिप्राय यह है, क्या उस अग्नि का सदुपयोग करने का नाम उसका पूजन है।

मेरे प्यारे! देखो, चतुर्थ अग्नि का नाम वैश्वानर कहलाता है। गृह को त्याग करके पति पत्नी दोनो विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करते है, अपने अनुभवो को देते है। यह प्रायः महाराज अश्वपति के राष्ट्र में और देखो, त्रोता के काल में भी यह प्रायः परम्परा हमारे यहाँ रही। आज मैं इस परम्परा के सम्बन्ध में विशेष विवेचना न देता हुआ, इन अग्नियो का पूजन करने का नाम स्वर्ग कहलाता है। जब मुनिवरों! देखो, आचार्य का पूजन करने का नाम स्वर्ग कहलाता है।

तृतीय अग्नि का नाम आह्वनीय अग्नि कहा जाता है तो बेटा! देखो, विद्यालयों में माता पिता गृह को त्याग करके ज्येष्ठे पुत्रों! को देखो, सर्वत्र प्रदान करके, मेरे पुत्रों! वह देश में भ्रमण करते है, राष्ट्र में भ्रमण करते रहते है, और राष्ट्र और व्रेति राष्ट्र मानो देखो, अनाराष्ट्रं ब्रह्मे वह परमात्मा का चिन्तन करते, विद्या प्रदान करते हुए भ्रमण करने के पश्चात जब पूर्ण विवेक हो जाए तो बेटा! उसके पश्चात सन्यास अपने प्रभु की महिमा का गुणगान गाने वाले बने। तो बेटा! ऋषि ने कहा, क्या यह चार प्रकार की अग्नियों का पूजन करने का नाम, हे ब्रह्मचारी! स्वर्ग में जाना है, ये स्वर्ग के मानो चार प्रकार के मार्ग है इनको तुम्हें अपनाना है, तो स्वर्ग आ जाएगा ये स्वर्ग की प्रतिभा कही गई है, मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो वर्णन करने के पश्चात उन्होंने कहा, तो और क्या जानना चाहते हो? जब मुनिवरों! देखो, आचार्य ने ये कहा कि इन अग्नियों की पूजा करने का नाम स्वर्ग है, तो उन्होने कहा अप्रतं ब्रह्मे तीसरा वचन रह गया, तुम स्वीकार करो, क्या चाहते हो?

मुझे स्मरण आता रहता है जब ऋषि मुनि इसके ऊपर अन्वेषण करते हैं, तो बेटा! यही अग्नि कहीं गार्हपथ्य नाम की बन करके रहती है, यही अग्नि कहीं वैश्वानर नाम की बन करके रहती है, यही

अग्नि मानो आह्वनीय नाम की अग्नि बन करके रहती है।

परन्तु वही अग्नि वैश्वानर नाम की अग्नि है, जो बेटा! देखो, विद्यालयों में, आचार्यों के हृदयों में प्रवेश होती रहती हैं, मानो प्रविष्ट रहती है, और वह मानो देखो, बालिकाओं को माताएं देखो, अपनी शिक्षा में परणित करती हैं उसे आह्वनीय अग्नि कहते हैं, जो हृदयों में ज्ञान है परन्तु देखो, दूसरे अग्नि की प्रतिभा में आ करके, उस अग्नि को जागरूक किया जाता है। मेरे प्यारे! देखो, वह आह्वनीय अग्नि मेरे प्यारे! वह आह्वान के द्वारा ही प्रकाशित होती है, वह अपना नृत्त करने लगती है, और प्रकाश में ला करके मानव, अपने में बुद्धिमता से, नाना प्रकार की बुद्धियों को जागरूक कर लेता है। मेरे पुत्रों! देखो, यही तो अग्नि है, जो मानो देखो, विद्यालयों में प्रवेश होती है, ब्रह्मचारी पवित्र बनाया जा रहा है, मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारी को शिक्षा प्रदान करते हुए शिक्षा ही तो वह शब्द ही तो अग्नि के रूप में प्रवेश हो करके मानव के हृदयों में जो ज्ञान का पुंज है। उसे वह जागरूक करके बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों को मानवीयता को ऊँचा बनाने वाला है।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-आत्मा का प्रश्न

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ कठोपनिषद १.१.२०

पदार्थः नाचिकेता तीसरा वर मांगता है- (मनुष्ये प्रेते) मनुष्य की मृत्यु होने पर (या इयं विचिकत्सा) जो यह संदेह होता है कि, (एके अयं अस्ति इति) कई कहते हैं कि यह है और (एके न अयं अस्ति इति) दूसरे कहते हैं कि यह नही है। (स्वया अनुशिष्टः अहं एतत् विद्यां) आप के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मैं यही जान जाऊं, (एष वराणां तृतीयः वरः) यह वरों में तीसरा वर है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः । अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥ कठोपनिषद १.१.२१

पदार्थः यम कहता है-(देवैः अत्र अपि पुरा विचिकित्सितं) देवों ने भी इस विषय में पहिले संदेह किया था, (न हि सुविज्ञेयं) इसका जानना आसान नही है। (एष धर्मः अणुः) यह सूक्ष्म ज्ञान है। हे (नचिकेतः) नाचिकेता! (अन्यं वरं वृणीष्व) और कोई वर मांग। (मा मा उपरोत्सीः) मेरे ऊपर दबाव न डाल। (एनं मा अतिसृज) इस वर को छोड दे। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तीसरे वचन में ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! मैं यह चाहता हूँ कि क्या मैं ब्रह्मणं ब्रहे यह आत्मा शरीर को त्याग करके कहां जाता है, भगवन!।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी नाचिकेता! हमारे बहुत से पूर्वज चले गएं है संसार के प्रणालियों के पूर्वज चले गएं है, नाना ऋषि चले गएं हैं, परन्तु देखो, तुम यह आत्मा का प्रसंग न लो, यह आत्मा का विचित्र मानो विचित्र प्रसंग है, इस प्रसंग में तुम न आओ।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-आत्मा का प्रश्न

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ कठोपनिषद १.१.२३

पदार्थः हे नचिकेता ! तुम (शतायुषः) सौ वर्ष पर्यन्त जीने वाले (पुत्र-पौत्रान्) पुत्र और पौत्रों (पोतों) को (बहून्, पशून्) बहुत से गौ आदि पशुओं को (हस्ति-हिरण्यम्) हाथियों तथा सुवर्ण को (अश्वान्) और घोड़ों को (वृणीष्व) मांगो और (भूमेः) पृथिवी के (महत्) बड़े (आयतनम्) राज्य को (वृणीष्व) मांगो (च) और (स्वयम्) तुम भी (यावत्) जितने (शरदः) वर्षों तक (इच्छसि) जीना चाहते हो, उतने वर्षों तक (जीव) जीवन प्राप्त करो। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥ कठोपनिषद १.१.२५

पदार्थः (मर्त्यलोके) इस पृथिवी पर (ये ये) जो-जो (कामाः) कामनाएं (दुर्लभाः) दुर्लभ हैं, उन (सर्वान्) सब (कामान्) कामनाओं को (छन्दतः) स्वेच्छा से (प्रार्थयस्व) मांगो । (इमाः) ये जो (सरथाः) रमण के साधन सम्पन्न रथों पर बैठी हुई (सतूर्याः) श्रुतिमधुर बाजों के सहित (इमाः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली रूपवती स्त्रियां हैं, उनको देता हूं (हि) क्योंकि (ईदृशाः) ऐसी सौन्दर्ययुक्त तथा रूप सम्पन्न स्त्रियां (मनुष्यैः) सामान्य मनुष्यों को (न, लम्भनीयाः) प्राप्त नहीं हो सकतीं । (मत्प्रत्ताभिः) मुझ से दी गई (आभिः) इन तन, मन, धन से सेवा करने वाली युवतियों से (परिचारयस्व) अपनी सेवा कराओ और (नचिकेतः) हे नचिकेता ! (मरणम्) मृत्यु अर्थात् मरने के बाद आत्मा के विषय में (मा, अनुप्राक्षीः) मत पूछो। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! देखो, वह यमाचार्य ने नाना सुन्दरिया और नाना दुग्ध देने वाले पशु नाना मानो देखो, एक पंक्ति में स्थित कर दिए, और पृथ्वी का राज जिसमें बेटा! देखो, नाना अश्व, अश्वत करने के लिए मेरे प्यारे! नाचिकेता को कहा हे ब्रह्मचारी! तुम यह संसार को भोगो, यह संसार तुम ये पृथ्वी के राष्ट्र को स्वीकार करो नाना दुग्ध देने वाले पशु है, मानो वाहन है स्वर्णमयी मानो देखो, जटित होने वाले

वाहन है नाना देवियां है, तुम इन्हें मानो देखो, दिव्याम ब्रह्मणे भोगाम तुम इन्हें भोगवाद में लाओ, और तुम संसार के मानो वैभव में आ जाओ, और तुम पृथ्वी के राज को भोगो, तुम इस आत्मा के प्रसंग को न लो।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-आत्मा का प्रश्न

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥
कठोपनिषद १.१.२६

पदार्थः (अन्तक) हे यमाचार्य ! (यत्) जो तुमने सांसारिक भोगों के देने को कहा है वे सब (श्वोभावाः) कल रहेंगे वा नहीं अर्थात् उत्पत्ति-विनाशवाले होने से अनित्य हैं और (एतत्) ये भोग (मर्त्यस्य) मनुष्य की (सर्वेन्द्रियाणाम्) सब चक्षुरादि इन्द्रियों के (तेजः) प्रताप या बल को (जरयन्ति) नष्ट कर देते हैं । और जो आप ने यथेष्ट आयु देने को कहा है, यह (सर्वम्, अपि) सभी (जीवनम्) जीवन (अल्पम्, एव) अल्प ही है अर्थात् आत्मज्ञान से होने वाली मुक्ति की अपेक्षा सौ दो सौ वर्षों का जीवन तुच्छ ही है । और जो आपने सुन्दर रथादि सहित स्त्रियों को देने को कहा है, वे (वाहाः) रथादि वाहनों सहित स्त्रियां, (तव, एव) आपकी ही रहें और (नृत्यगीते) नाचना, गाना व बजाना भी (तवैव) आपका ही रहे, मैं ये सब नहीं चाहता । आचार्य राजवीर शास्त्री

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

नाचिकेता ने कहा प्रभु! मुझे तो आत्मा का ही प्रश्न चाहिए। बालक नाचिकेता ने कहा हे भगवन! मैं आपके वाक को मैं स्वीकार कर लेता हूँ, परन्तु मैं यह चाहता हूँ, क्या यह आज है, और कल नहीं रहेंगे, प्रभु! तो मुझे अपार कष्ट होगा आज मानो देखो, दुग्ध देने वाले पशु है, कल ये दुग्ध देने वाले पशु संसार से चले जाएंगे, तो प्रभु! मुझे अपार कष्ट होगा, राजं में नाना प्रकार की क्रान्तियां होंगी, राष्ट्र में मानो देखो, इस राष्ट्र में नाना प्रकार का देखो, भेदन होने लगेगा, तो प्रभु! मैं इस राष्ट्र को नहीं चाहता, मैं पृथ्वी के राष्ट्र को भी नहीं चाहता, नाना देवियों को नहीं चाहता, प्रभु!।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-आत्मज्ञान

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् । योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥ कठोपनिषद १.१.२९

पदार्थः (मृत्यो) हे यमाचार्य ! (यस्मिन्) जिस आत्मज्ञान के विषय में (इदम्) यह अर्थात् मरने के बाद आत्मा की सत्ता है या नहीं इत्यादि (विचिकित्सन्ति) देव व मनुष्य सभी संशय करते हैं (यत्) जो आत्मज्ञान (महति) बड़ी (साम्पराये) परमार्थ-दशा में है (तत्) उस ज्ञान को (नः) हमारे लिए (ब्रूहि) उपदेश कीजिए । (यः) जो (अयम्) यह आत्मज्ञान-विषयक वर है, यह (वरः) वर (गूढम्) छिपी हुई अर्थात् अस्पष्ट होने से अकथनीय दशा को (अनुप्रविष्टः) प्राप्त हो रहा है, इसलिए (नचिकेता) नचिकेता (तस्मात्) उससे (अन्यम्) भिन्न वर को (न, वृणीते) नहीं मांगता। आचार्य राजवीर शास्त्री

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मानो देखो, मुझे तो एकां ब्रह्मणं मुझे तो प्रभु! वह मार्ग दीजिए, जो मेरे द्वार मेरे हृदय में समाहित हो जाए, और मेरे हृदय से वह दूरी न हो सके। हे प्रभु! ऐसा आत्म तत्त्व ही है, जो मुझे आप मेरे हृदय में प्रविष्ट कर दोगे, तो मेरे हृदय से नहीं जा सकेगा।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-आत्मज्ञान

शृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः । तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥ कठोपनिषद १.२.१

पदार्थः हे नचिकेता ! (श्रेयः) अतिशय प्रशंसित कल्याण का मार्ग अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति का साधनरूप कर्म (अन्यत्) लौकिक अभ्युदय की अपेक्षा विलक्षण और दूसरा है । (उत) और (प्रेयः) अतिशय प्रिय लगने वाला लौकिक स्त्रीधनैश्वर्यादि अभ्युदय का मार्ग (अन्यत्, एव) मोक्ष-मार्ग से भिन्न ही है। (ते) वे श्रेय और प्रेय (उभे) दोनों (नानार्थे) भिन्न-भिन्न प्रयोजन वाले (पुरुषम्) मनुष्य को (सिनीतः) कर्म-फल रूप रस्सियों से बांधते हैं । (तयोः) उन दोनों में से (श्रेयः) कल्याणकारी मोक्ष-मार्ग को (आददानस्य) ग्रहण करने वाले का (साधु) अच्छा फल (भवति) होता है (उ) और (यः) जो (प्रेयः) अत्यन्त प्रिय वस्तुओं को (वृणीते) स्वीकार करता है, वह (अर्थात्) मनुष्य-जीवन के परमलक्ष्य मोक्षरूप प्रयोजन से (हीयते) भ्रष्ट हो जाता है। आचार्य राजवीर शास्त्री

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मैं आत्म चिन्तन करने वाला बन जाऊंगा, हे प्रभु! मैं मानो देखो, प्रभु के राष्ट्र में चला जाऊंगा, प्रभु के राष्ट्र में जाने के पश्चात, मैं ऐसे राष्ट्र में चला जाऊंगा, जहां प्रभु! मेरी कोई सीमा ही न रहेगी, मैं कहीं भी विचरण कर सकता हूँ, हे प्रभु! देखो, एक राजा का राष्ट्र और उसकी सीमा है, दूसरी सीमा में जब चला जाता है, तो उसको अपार कष्ट होगा। हे प्रभु! जो प्रभु का मानो आत्म तत्त्ववेत्ता बन करके, प्रभु के राष्ट्र में चला जाता है, हे प्रभु! वह अनन्तमयी राष्ट्र है, वह सूक्ष्म, कारण और देखो, स्थूल जगत को जानता हुआ, मैं प्रभु! आत्मवेत्ता बन करके और प्रभु के राष्ट्र में भ्रमण कर सकता हूँ। प्रभु! वह ऐसा अनन्तमयी राष्ट्र होगा, जिसकी कोई सीमा नहीं, प्रकाश ही प्रकाश रहेगा, जहां रात्रि नहीं रहेगी, अन्धकार नहीं रहेगा। जहां प्रभु! अन्धकार रात्रि नहीं वहां प्रभु! आलस्य और प्रमाद न रहेगा। जहां आलस्य और प्रमाद नहीं रहेगा वहां केवल प्रकाश में ही आत्मा आत्मा दृष्टिपात आने लगेगी।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-आत्मज्ञान

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता । विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त॥ कठोपनिषद १.२.४

पदार्थः (एते) श्रेय और प्रेय ये दोनों मार्ग (दूरम्, विपरीते) एक दूसरे से भिन्न होने से दूर तथा रात-दिन के समान परस्पर विरुद्ध हैं । (विषूची) परस्पर विरोधी प्रयोजनों के सूचक हैं, इन दोनों को विद्वानों ने (अविद्या) प्रेय को विपरीत ज्ञान होने से अविद्या (च) और विद्या श्रेय को यथार्थ ज्ञान होने से विद्या (इति) इस प्रकार (ज्ञाता) जाना है । मैं (नचिकेतसम्) हे नचिकेता ! तुम को (विद्याभीप्सिनम्) यथार्थ- ज्ञानरूप श्रेय-मार्ग को अपनाने से विद्या को चाहने वाला (मन्ये) मानता हूं अर्थात् आत्म ज्ञान के लिए योग्य अधिकारी समझता हूं, क्योंकि (त्वा) तुम को (बहवः) बहुत से (कामाः) प्रलोभन वाले विषयों के भोग (न, लोलुपन्त) विषयों के प्रति लोभित (लुभायमान) नहीं कर सके अर्थात् तुम्हें संसार के विषय नहीं बांध सके हैं। आचार्य राजवीर शास्त्री

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः । आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ कठोपनिषद १.२.७

पदार्थः (यः) जो आत्मा का ज्ञान (बहुभिः) बहुत से मनुष्यों को (श्रवणाय) सुनने को (अपि) भी (न, लभ्यः) प्राप्त नहीं होता अर्थात् सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहने अथवा योग्य अधिकारी न होने के कारण सुन भी नहीं पाते और (बहवः) बहुत से मनुष्य (श्रृण्वन्तः) सुनते हुए (अपि) भी (यम्) जिस आत्मा के ज्ञान को (न, विद्युः) नहीं समझ सकते । क्योंकि (अस्य) इस आत्मज्ञान का (वक्ता) व्याख्यान करने वाला (आश्चर्यः) असंख्यों में कोई विरला ही अद्भुतस्वरूप होता है और (अस्य) इस आत्मज्ञान का (लब्धा) प्राप्त करने वाला (कुशलः) कोई विरला ही विवेकी कुशाग्र बुद्धि होता है और (कुशलानुशिष्टः) विवेकी ब्रह्मज्ञानी आचार्य से उपदेश पाया हुआ (ज्ञाता) ज्ञानी (आश्चर्यः) कोई विरला ही अद्भुतरूप में होता है, सब नहीं। आचार्य राजवीर शास्त्री

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः । अनन्य प्रोक्ते गतिरत्र नास्ति

अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्॥ कठोपनिषद १.२.८

पदार्थः (अवरेण) परमार्थी से भिन्न सामान्य (नरेण) मनुष्य से (प्रोक्तः) उपदेश किया हुआ (एषः) आत्मज्ञान (बहुधा) बार-बार (चिन्त्यमानः) चिन्तन किया हुआ भी (न, सुविज्ञेयः) सरलता से नहीं जाना जा सकता (अनन्यप्रोक्ते) सामान्य मनुष्य से उपदिष्ट (अत्र) इस आत्मज्ञान में (गतिः) आत्मजिज्ञासु की प्रवृत्ति (नास्ति) नहीं होती (हि) क्योंकि वह आत्मतत्त्व (अणु-प्रमाणात्) सूक्ष्म-प्रमाण से भी (अणीयान्) अत्यन्तसूक्ष्म है, अतः (अतर्क्यम्) यह तर्क का विषय नहीं है। आचार्य राजवीर शास्त्री

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने, इस प्रकार ब्रह्मचारी की जिज्ञासा को दृष्टिपात किया, तो वह बड़े गद गद हुए, उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! अपने मन ही मन में कहता है यमाचार्य क्या हे ब्रह्मचारी! तू तो देवता है। हे ब्रह्मचारी! तू देवता है। तू मानो तीन आश्रमों को त्याग करके, दो आश्रमों को त्याग करके तू सीधा मोक्ष की पगडण्डी को प्राप्त करना चाहता है। ये तुझे धन्य है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने आत्मतत्त्व की कुछ वार्ता प्रगट कराने लगे, उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! तुम यह स्वीकार करो, एक चित्त हो करके, मनस्तव को एकाग्र करके, मेरे वाक को स्वीकार करो।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद-आत्मज्ञान

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ कठोपनिषद १.२.१६

पदार्थः (एतत्) यह 'ओम्' (हि, एव) ही (अक्षरम् १. अवधारणवाचकपदद्वयेनान्यस्य सर्वथा प्रतिषेधः कथ्यते । अर्थात् यहां 'हि, एव' ये दोनों पद निश्चयार्थ के बोधक हैं । जिससे स्पष्ट है कि ब्रह्म का 'ओम्' ही मुख्यनाम है । २. 'अक्षरम्' पद के दो अर्थ हैं—(१) विनाश-रहित (२) व्यापक । इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—"अक्षरं नक्षरं विद्याद् अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्।" नाश-रहित शाश्वत (ब्रह्म) ब्रह्म है । (एतत्, एव) यह 'ओम्' ही (हि) निश्चय से (परम्) सर्वाधिक सूक्ष्म होने से (अक्षरम्) अक्षर=व्यापक है, इससे सूक्ष्म कोई नहीं है । (एतत्) इस अविनाशी ब्रह्म को (हि, एव) ही निश्चय से (ज्ञात्वा) जान कर (यः) जो पुरुष (यत्) जो, सांसारिक या पारलौकिक सुख (इच्छति) चाहता है, (तत्) वह सुख (तस्य) उसको अवश्य प्राप्त हो जाता है। आचार्य राजवीर शास्त्री

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ कठोपनिषद १.२.१७

पदार्थः ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है । (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष-सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति-रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। आचार्य राजवीर शास्त्री

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

हे ब्रह्मचारी! तुम्हें यह जानना चाहते हो। यह आत्मा शरीर को त्याग करके कहां कहा जाता है। यह आत्मा शरीर को त्याग करके मानो अपने चित्त के मण्डल में प्रवेश हो जाता है, और चित्त के मण्डल में यह सिद्ध हो जाता है, मानो उससे ऊर्ध्वा में यह भ्रमण करता हुआ इसे किसी माता का गर्भाशय संस्कारों के अनुसार प्राप्त होता हुआ, वहां इसका निर्माण हो करके शिशु के रूप में यह पुनः संसार

में प्रवेश हो जाता है। यह संसार में चला जाता है।

हे नाचिकेता! तुम्हें यह ज्ञान हो गया परन्तु देखो, आज तुम ऐसा प्रयास करो जो मानो चित्त के मण्डल में कोई संस्कार न रहे, और चित्त के मण्डल के जब तक संस्कार समाप्त नहीं हो जाते तब तक मानो देखो, मोक्ष का मार्ग प्राप्त नहीं होगा। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा प्रभु! मैं आपके चरणों की वंदना करने इसीलिए आया हूँ। क्या मुझे वह मार्ग दीजिए, मुझे वह स्थित कीजिए, जहां मैं स्थिर हो करके, और मेरे चित्त के संस्कार समाप्त हो जाए, मेरे प्यारे! उन्होंने कहा तो ब्रह्मचारी! चित्त के मण्डल में संस्कार विद्यमान रहते है। और करोड़ों जन्मों के संस्कार चित्त में विद्यमान होते है।

परन्तु देखो, वह संस्कार जब तक तुम्हारा चित्त का मण्डल मानो देखो, निर्वसन न हो जाएं, और निर्वृतम संस्कारों से जब तक रहित नहीं हो जाता, तब तक परमात्मा का अनन्त राष्ट्र प्राप्त नहीं होगा। मेरे प्यारे! देखो, यमाचार्य ने कहा हे नाचिकेता! यह आत्मा जब शरीर को त्याग देता है तो अपने क्रियाकलापों के साथ, अपने कर्म बन्धन के साथ यह चित्त के मण्डल में प्रवेश कर जाता है और जब यह चित्त के मण्डल में चला जाता है, तो वायुमण्डल में देखो, कुछ भ्रमण करता है और भ्रमण करने के पश्चात इसकी पुनः स्मरणीय शक्ति मानो इन्द्र नाम की वायु में रत्त हो गई अश्व सम्भवा मानो वह समाप्त हो जाए और देखो, माता के गर्भ में प्रवेश करके जैसी प्रवृत्ति शरीर को त्यागते समय आत्मा की प्रवुति होती है, मन तत्त्व के साथ में, प्राण तत्त्व के साथ में मानो उसी में वह जन्म ले लेता है। मेरे प्यारे! ऋषि कहता है कि आत्मा सदैव शाश्वत है वह चेतना कहलाता है चेतना में रत्त ब्रह्मे यह चेतना है। और चेतना में मानो देखो, ज्ञान और प्रयत्न इनका मौलिक सर्वत्र एक गुण कहलाता है।

मेरे पुत्रो! देखो, ऋषि ने अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए कहा हे, ब्रह्मचारी! तुम इसका अध्ययन करो, आत्मचिन्तन मे रत्त हो जाओ। मानो देखो, यही तुम्हारे लिए उत्तम है। मेरे पुत्रो! जब ऋषि ने इस प्रकार यह निर्णय कराया तो निर्णय ले करके मेरे पुत्रों! बालक मौन गया और मौन हो करके इसके ऊपर चिन्तन प्रारम्भ किया। मेरे प्यारे! देखो, विचार विनिमय क्या है, मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ आत्म चर्चा बेटा! देखो, मैं इससे पूर्व काल में ही प्रकट करूंगा।

मेरे प्यारे! नाचिकेता ने कहा धन्य है प्रभु! मुझे वर्णन कराईए, उन्होंने कहा तो हे ब्रह्मचारी! अब तुम साधना में परणित हो जाओ, मानो देखो, आत्म तत्त्व को जानने के लिए कि आत्मा क्या है? यह चेतना है। यह आत्मा इन्द्रियों के इन्द्रयाणि ब्रह्मणं देखो, इन्द्रियों का जो विषय है, वह आत्मा से ही प्रसारित होता है, जब मानो देखो, जैसे मानव के हृदय जब मानव दृष्टिपात करता है, तो मानो देखो, रूप को दृष्टिपात करता है नेत्रों से तो रूप की स्थिति, मानव के हृदय में हो जाती है। और यदि श्रोत्रों को ग्रहण करता है, श्रोत्रों में भी चित्त है, शब्द है, वह भी मानो देखो, हृदय में प्रवेश हो जाता है,

और मुनिवरों! देखो, घ्राण में सुगन्ध है, दुर्गन्ध है, या सुगन्धि ही ले ली जाए सुगन्धि के साथ, उनकी ध्वनियां है, वह भी मानव के हृदय में प्रवेश हो जाती है। मानो देखो, इसी प्रकार त्वचा है, जितना संसार का प्रीति है प्रेम है वह सर्वत्र त्वचा में विद्यमान है, वह मन का समन्वय रहता है। मानो वह भी हृदय में प्रविष्ट हो जाता है, इसी प्रकार देखो, ब्रह्मणो रसना षट रस कहलाते है, प्रकृति के वह षटो रस भी, रसना के अग्रभाग में होते है। मानो देखो, जैसे षट रस कहलाता है, इसका भी सर्वत्र उनकी भी तरंगे मानव के हृदय में स्थित तो हृदय ही तो षट रस की निर्णय करने वाला है। रूप को भी यह हृदय ही निर्णय करने वाला है, बेटा! देखो, हृदय में समस्त यह विद्यमान हो जाते है, तो यह जो हृदय है यह आत्मा का चित्त कहलाता है। यह आत्मा का चित्त है। परन्तु देखो, जो हृदय है, उस हृदय में ऐसे संस्कार भरण करने चाहिए, हृदय में ऐसे रूप को लाना चाहिए। जैसा प्रभु का सुन्दर यह स्वरूप ब्रह्मांड है, मानो शब्दों को दिशाओं के शब्द रूपों में लाना चाहिए।

मेरे प्यारे! घ्राण को पृथ्वी का सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान ला करके हृदय में प्रवेश कर देना चाहिए। मेरे प्यारे! इसी प्रकार प्रीति चन्द्रमा में होती है चन्द्रमा में जितने गुण है, मानो देखो, जैसे अमृत बह रहा है, वह अमृत भी इसमें ही वह अग्नि मानो देखो, ब्रह्मणे अग्नि से नेत्रों का स्वरूप बनता है, और अग्नि के सर्वत्र गुण रूप में ला करके स्थित कर देने चाहिए, इनका साकल्य बना करके, इनका एक साकल्य बन गया है, रूप, रस, गन्ध इत्यादियों का दिशाओं का एक साकल्य बन करके, मानो देखो, हृदय रूपी यज्ञशाला में तुम उसका याग कर दो, और जब इसका याग हो जाएगा, तो तुम्हारे यह जो संस्कार है, यह भोगने वाले बन जाएंगे, कुछ क्षय हो जाएंगे, मानो देखो, कुछ समय ऐसा आयेगा ब्रह्मचारी तुम साधना में और ब्रह्माण्ड में उड़ान उड़ने वाले बन जाओगे, अन्त में यह होगा क्या मङ्गलम ब्रह्मे व्रतम मोक्षाणाम पगवृत्ति देवा वेद का वाक कहता है कि तुम मोक्ष की पगडण्डी के गामी बन जाओगे, और वह परमात्मा यह हृदय जो आत्मा का हृदय है। इस हृदय का परमात्मा के हृदय से समन्वय हो जाएगा, और समन्वय हो करके दोनों हृदयों का जब समन्वय हो जाएगा, एकोकीकरण हो जाएगा, तो ब्रह्मचारी तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे। मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि ने यमाचार्य ने मृत्यु को विजय होने वाले यमाचार्य ने यह निर्णय दिया निर्णय दे करके जब इस वाक को इन्होंने श्रवण किया। तो नाचिकेता ने क्रिया अपने में क्रियात्मक अपने में सङ्कल्प किया बेटा! नाचिकेता अपने में बड़े अद्वितीय ब्रह्मचारी थे।

यह है बेटा! आज का वाक्, आज के वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने में बेटा! देखो, गुरु और शिष्य दोनो अपने अपनी स्थली पर विद्यमान हो करके एक दूसरे में मानो देखो, रत्त होते चलें जाएं जैसे पितरों की आज्ञा पालन करने के लिए बालक नाचिकेता देखो, मृत्यु आचार्य के गृह में

पहुंचे औेर मृत्यु को उन्होने विजय किया। मृत्यु को विजय वही कर सकता है जो बेटा! देखो, मृत्युञ्जय बन जाता है। मृत्युञ्जय कैसे बनता है? जो मानो देखो, अपनी बाह्य प्रवृत्तियों को मृत्यु, मानो उसे मृत्युदण्ड देता है और आन्तरिक जगत में प्रवेश कर जाता है। बेटा! वे परमपिता परमात्मा को प्राप्त करता हुआ मृत्युञ्जय बन जाता है।

यमाचार्य नाचिकेता संवाद

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

हे ब्रह्मचारी! तुम्हें यह जानना चाहते हो। यह आत्मा शरीर को त्याग करके कहां कहा जाता है। यह आत्मा शरीर को त्याग करके मानो अपने चित्त के मण्डल में प्रवेश हो जाता है, और चित्त के मण्डल में यह सिद्ध हो जाता है, मानो उससे ऊर्ध्वा में यह भ्रमण करता हुआ इसे किसी माता का गर्भाशय संस्कारों के अनुसार प्राप्त होता हुआ, वहां इसका निर्माण हो करके शिशु के रूप में यह पुनः संसार में प्रवेश हो जाता है। यह संसार में चला जाता है।

हे नाचिकेता! तुम्हें यह ज्ञान हो गया परन्तु देखो, आज तुम ऐसा प्रयास करो जो मानो चित्त के मण्डल में कोई संस्कार न रहे, और चित्त के मण्डल के जब तक संस्कार समाप्त नहीं हो जाते तब तक मानो देखो, मोक्ष का मार्ग प्राप्त नहीं होगा। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा प्रभु! मैं आपके चरणों की वंदना करने इसीलिए आया हूँ। क्या मुझे वह मार्ग दीजिए, मुझे वह स्थित कीजिए, जहां मैं स्थिर हो करके, और मेरे चित्त के संस्कार समाप्त हो जाए, मेरे प्यारे! उन्होंने कहा तो ब्रह्मचारी! चित्त के मण्डल में संस्कार विद्यमान रहते है। और करोड़ों जन्मों के संस्कार चित्त में विद्यमान होते है।

परन्तु देखो, वह संस्कार जब तक तुम्हारा चित्त का मण्डल मानो देखो, निर्वसन न हो जाएं, और निर्वृतम संस्कारों से जब तक रहित नहीं हो जाता, तब तक परमात्मा का अनन्त राष्ट्र प्राप्त नहीं होगा।

मेरे प्यारे! देखो, यमाचार्य ने कहा हे नाचिकेता! यह आत्मा जब शरीर को त्याग देता है तो अपने क्रियाकलापों के साथ, अपने कर्म बन्धन के साथ यह चित्त के मण्डल में प्रवेश कर जाता है और जब यह चित्त के मण्डल में चला जाता है, तो वायुमण्डल में देखो, कुछ भ्रमण करता है और भ्रमण करने के पश्चात इसकी पुनः स्मरणीय शक्ति मानो इन्द्र नाम की वायु में रत्त हो गई अश्व सम्भवा मानो वह

समाप्त हो जाए और देखो, माता के गर्भ में प्रवेश करके जैसी प्रवृत्ति शरीर को त्यागते समय आत्मा की प्रवुति होती है, मन तत्त्व के साथ में, प्राण तत्त्व के साथ में मानो उसी में वह जन्म ले लेता है। मेरे प्यारे! ऋषि कहता है कि आत्मा सदैव शाश्वत है वह चेतना कहलाता है चेतना में रत्त ब्रह्मे यह चेतना है। और चेतना में मानो देखो, ज्ञान और प्रयत्न इनका मौलिक सर्वत्र एक गुण कहलाता है।

मेरे पुत्रो! देखो, ऋषि ने अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए कहा हे, ब्रह्मचारी! तुम इसका अध्ययन करो, आत्मचिन्तन मे रत्त हो जाओ। मानो देखो, यही तुम्हारे लिए उत्तम है। मेरे पुत्रो! जब ऋषि ने इस प्रकार यह निर्णय कराया तो निर्णय ले करके मेरे पुत्रों! बालक मौन गया और मौन हो करके इसके ऊपर चिन्तन प्रारम्भ किया। मेरे प्यारे! देखो, विचार विनिमय क्या है, मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ आत्म चर्चा बेटा! देखो, मैं इससे पूर्व काल में ही प्रकट करूंगा।

मेरे प्यारे! नाचिकेता ने कहा धन्य है प्रभु! मुझे वर्णन कराईए, उन्होंने कहा तो हे ब्रह्मचारी! अब तुम साधना में परणित हो जाओ, मानो देखो, आत्म तत्त्व को जानने के लिए कि आत्मा क्या है? यह चेतना है। यह आत्मा इन्द्रियों के इन्द्रयाणि ब्रह्मणां देखो, इन्द्रियों का जो विषय है, वह आत्मा से ही प्रसारित होता है, जब मानो देखो, जैसे मानव के हृदय जब मानव दृष्टिपात करता है, तो मानो देखो, रूप को दृष्टिपात करता है नेत्रों से तो रूप की स्थिति, मानव के हृदय में हो जाती है। और यदि श्रोत्रों को ग्रहण करता है, श्रोत्रों में भी चित्त है, शब्द है, वह भी मानो देखो, हृदय में प्रवेश हो जाता है, और मुनिवरों! देखो, घ्राण में सुगन्ध है, दुर्गन्ध है, या सुगन्धि ही ले ली जाए सुगन्धि के साथ, उनकी ध्वनियां है, वह भी मानव के हृदय में प्रवेश हो जाती है। मानो देखो, इसी प्रकार त्वचा है, जितना संसार का प्रीति है प्रेम है वह सर्वत्र त्वचा में विद्यमान है, वह मन का समन्वय रहता है। मानो वह भी हृदय में प्रविष्ट हो जाता है, इसी प्रकार देखो, ब्रह्मणो रसना षट रस कहलाते है, प्रकृति के वह षटो रस भी, रसना के अग्रभाग में होते है। मानो देखो, जैसे

षट रस कहलाता है, इसका भी सर्वत्र उनकी भी तरंगे मानव के हृदय में स्थित तो हृदय ही तो षट रस की निर्णय करने वाला है। रूप को भी यह हृदय ही निर्णय करने वाला है, बेटा! देखो, हृदय में समस्त यह विद्यमान हो जाते है, तो यह जो हृदय है यह आत्मा का चित्त कहलाता है। यह आत्मा का चित्त है। परन्तु देखो, जो हृदय है, उस हृदय में ऐसे संस्कार भरण करने चाहिए, हृदय में ऐसे रूप को लाना चाहिए। जैसा प्रभु का सुन्दर यह स्वरूप ब्रह्मांड है, मानो शब्दों को दिशाओं के शब्द रूपों में लाना चाहिए।

मेरे प्यारे! घ्राण को पृथ्वी का सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान ला करके हृदय में प्रवेश कर देना चाहिए। मेरे प्यारे! इसी प्रकार प्रीति चन्द्रमा में होती है चन्द्रमा में जितने गुण है, मानो देखो, जैसे अमृत बह रहा है, वह अमृत भी इसमें ही वह अग्नि मानो देखो, ब्रह्मणे अग्नि से नेत्रों का स्वरूप बनता है, और अग्नि के सर्वत्र गुण रूप में ला करके स्थित कर देने चाहिए, इनका साकल्य बना करके, इनका एक साकल्य बन गया है, रूप, रस, गन्ध इत्यादियों का दिशाओं का एक साकल्य बन करके, मानो देखो, हृदय रूपी यज्ञशाला में तुम उसका याग कर दो, और जब इसका याग हो जाएगा, तो तुम्हारे यह जो संस्कार है, यह भोगने वाले बन जाएंगे, कुछ क्षय हो जाएंगे, मानो देखो, कुछ समय ऐसा आयेगा ब्रह्मचारी तुम साधना में और ब्रह्माण्ड में उड़ान उड़ने वाले बन जाओगे, अन्त में यह होगा क्या मङ्गलम ब्रह्मे व्रतम मोक्षाणाम पगवृत्ति देवा वेद का वाक कहता है कि तुम मोक्ष की पगडण्डी के गामी बन जाओगे, और वह परमात्मा यह हृदय जो आत्मा का हृदय है। इस हृदय का परमात्मा के हृदय से समन्वय हो जाएगा, और समन्वय हो करके दोनों हृदयों का जब समन्वय हो जाएगा, एकोकीकरण हो जाएगा, तो ब्रह्मचारी तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे। मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि ने यमाचार्य ने मृत्यु को विजय होने वाले यमाचार्य ने यह निर्णय दिया निर्णय दे करके जब इस वाक को इन्होंने श्रवण किया। तो नाचिकेता ने क्रिया अपने में क्रियात्मक अपने में सङ्कल्प किया बेटा!

यमाचार्य नाचिकेता संवाद

नाचिकेता अपने में बड़े अद्वितीय ब्रह्मचारी थे।

यह है बेटा! आज का वाक्, आज के वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने में बेटा! देखो, गुरु और शिष्य दोनो अपने अपनी स्थली पर विद्यमान हो करके एक दूसरे में मानो देखो, रत्त होते चलें जाएं जैसे पितरों की आज्ञा पालन करने के लिए बालक नाचिकेता देखो, मृत्यु आचार्य के गृह में पहुंचे और मृत्यु को उन्होने विजय किया। मृत्यु को विजय वही कर सकता है जो बेटा! देखो, मृत्युञ्जय बन जाता है। मृत्युञ्जय कैसे बनता है? जो मानो देखो, अपनी बाह्य प्रवृत्तियों को मृत्यु, मानो उसे मृत्युदण्ड देता है और आन्तरिक जगत में प्रवेश कर जाता है। बेटा! वे परमपिता परमात्मा को प्राप्त करता हुआ मृत्युञ्जय बन जाता है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ कठोपनिषद १.२.२७

ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है । (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष-सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति-रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।